वाराहपुराण में श्राद्धकल्प

डा. रचना शर्मा

भारतीय संस्कृति प्राचीनतम संस्कृतियों में अन्यतम है। भारतीय संस्कृति एवं जीवन में संस्कारों का विशेष महत्त्व है। मनुष्य के द्वारा की जाने वाली सम्यक् चेष्टाएँ जिनके द्वारा वह अपने जीवन के समस्त क्षेत्रों में उन्नति करता हुआ सुख शान्ति प्राप्त करता है, संस्कार कहलाती हैं।

भारतीय संस्कृति की स्थापना करने वाले समस्त धर्मशास्त्रीय ग्रन्थों में परलोक की सत्ता को स्वीकार किया गया है, जो परलोक की सत्ता को नहीं मानते वे नास्तिक माने जाते हैं। परलोक की इसी परिकल्पना को पुष्ट करते हैं–"श्राद्धकर्म" जिनका मानव जीवन के साथ घनिष्ठ सम्बन्ध है। जीवात्मा के स्थूलशरीर व सूक्ष्म शरीर दो रूप होते हैं, जब तक मानव इस लोक में है वह स्थूल शरीर से युक्त माना जाता है और मृत्यु के उपरान्त वह सूक्ष्मशरीर से युक्त हो जाता है। यहाँ से मरकर गये हमारे पितरगण पितृलोक में निवास करते हैं जैसा कि वेद कहते हैं–

अधामृता: पितृषु संभवन्तु[1]
पितृणां लोकमपि गच्छन्तु ये मृता:[2]

उन पितरों की तृप्ति के लिए श्राद्ध-कर्म सम्पादित किये जाते हैं। श्राद्ध द्वारा पितरों की तृप्ति प्रत्यक्षमूलक बन जाती है। पितृश्राद्ध प्रतिमास कृष्णपक्ष में किया जाता है जैसा कि *अथर्ववेद* में भी कहा गया है–'पितृभ्यो मासि उपमास्यं ददाति।'[3] *मनुस्मृति* के 'पित्रे रात्र्यहनी मास:' इस वचन के अनुसार मनुष्यों का एक महीना पितरों का एक दिन-रात होता है। इस प्रकार प्रतिमास श्राद्ध करने पर पितरों को वह भोजन प्रतिदिन की तरह मिलता रहता है और वे तृप्त रहते हैं। कृष्णपक्ष पितरों का दिन होता है और शुक्लपक्ष रात्रि अतएव श्राद्ध कृष्णपक्ष में सम्पादित किये जाते हैं।

वास्तव में पितरों को भोजन पहुँचाने और उन्हें तृप्त करने की क्रिया ही श्राद्ध है। श्राद्ध के दो स्वरूप हैं–पहला पितरों के नाम से अग्नि में हवन करना[4] और दूसरा अग्नि के सहोदरभूत ब्राह्मण की जठराग्नि में, ब्राह्मण के मुख के द्वारा उन पितरों के नाम से कव्य देना।[5] ऐसा करने पर साक्षात् अग्नि और 'ब्राह्मणस्य वैश्वानर:' (अग्नि) उस कव्य को सूक्ष्म रूप में परिवर्तित करके पितरों तक पहुँचाता है। वे पितर उस सूक्ष्म कव्य से तृप्त हो जाते हैं क्योंकि वे भी सूक्ष्मशरीरात्मक होते हैं। अतएव उनके लिए स्थूल से सूक्ष्मभूत भोजन की आवश्यकता होती है, जिससे उन्हें तृप्ति प्राप्त होती है। वे तृप्त पितरगण श्राद्धकर्त्ता को धन-धान्य आदि से सम्पन्न उत्तम जीवन प्रदान करते हैं। धर्मशास्त्रों की इसी मान्यता को पुष्ट करते हुए पुराणों ने विशद रूप से श्राद्धकर्म का निरूपण किया है। *वराह पुराण* भी इस सन्दर्भ में श्राद्धोचित काल, श्राद्ध विधियों, श्राद्ध में निमन्त्रण योग्य व्यक्ति आदि तथ्यों का विशद विवेचन प्रस्तुत करता है।

अतएव पितरों के निमित्त श्रद्धा से किये जाने वाले कार्य श्राद्ध कहलाते हैं। मनुष्य मात्र के लिए शास्त्रों में देवऋण, ऋषिऋण और पितृऋण–ये तीन ऋण बताये गये हैं। इनमें श्राद्ध के द्वारा पितृऋण से मुक्ति मिलती है। *विष्णुपुराण* में कहा गया है कि "श्राद्ध से तृप्त होकर पितृगण समस्त कामनाओं को पूर्ण करते हैं।[6] श्रद्धा शब्द से "श्रद्धया कृतं सम्पादितमिदम्' 'श्रद्धया दीयते यस्मात् तच्छ्राद्धम्' आदि अर्थों में अण् प्रत्यय करने पर श्राद्ध शब्द की निष्पत्ति होती है अर्थात् अपने पितृगण के उद्देश्य से श्रद्धापूर्वक किये जाने वाले कर्म विशेष को श्राद्ध कहते हैं। *ब्रह्मपुराण* में श्राद्ध का लक्षण इस प्रकार किया गया है–

देशे काले च पात्रे च श्रद्धया विधिना च यत्।
पितृनुद्दिश्य विप्रेभ्यो दत्तं श्राद्धमुदाहृतम्।।

अर्थात् देश, काल और पात्र में श्रद्धा द्वारा जो भोजन पितरों के उद्देश्य से ब्राह्मणों को दिया जाए उसे श्राद्ध कहते हैं। श्राद्धकर्म के महत्त्व को स्वीकार करते हुए *वराहपुराण* में स्वयं पितरों के द्वारा गाये पितृगीत का वर्णन मिलता है, जिसमें वे अपने कुल के मनुष्यों द्वारा श्राद्ध किये जाने की कामना करते हैं–

अपि धन्यः कुले जायादस्माकं मतिमान् नरः।
अकुर्वन् वित्तशाठ्यं यः पिण्डान् यो निर्वपिष्यति।
रत्नवस्त्रमहायानं सर्वं भोगादिकं वसु।
विभवे सति विप्रेभ्यो अस्मानुद्दिश्य दास्यति।[7]

अर्थात् हमारे कुल में कौन ऐसा बुद्धिमान्, धन्य मनुष्य उत्पन्न होगा जो वित्तशाठ्यता न करते हुए पिण्डदान करे। पितृगीत के रूप में की गयी पितरों की यह कामना श्राद्ध के महत्त्व को प्रतिपादित करती है और यह सिद्ध करती है कि पितृलोक में स्थित सूक्ष्म शरीरात्मक हमारे पितरों को श्राद्धकर्म के फल की कितनी आकांक्षा व आवश्यकता है। ये कर्म उनकी तृप्ति के एकमात्र साधन हैं अतः वे स्वयं श्रद्धाकांक्षी हैं। श्राद्धकर्म के प्रति पितरों में इसी प्रकार की अभिलाषा का भाव *मनुस्मृति* में भी देखने को मिलता है–

अपि नः स कुले जायाद्यो नो दद्यात् त्रयोदशीम्।
पायसं मधुसर्पिभ्यां प्राक्छाये कुञ्जरस्य च।[8]

श्राद्ध के लिए *वराहपुराण* में उचित समय का निरूपण किया गया है तथा उक्त काल में किये गये श्राद्धकर्म की फलप्राप्ति भी वर्णित है। *वराहपुराण* के अनुसार–

- व्यतीपात, अयनकाल, विषुवसंक्रान्ति[9], चन्द्रमा और सूर्य के ग्रहण तथा सभी राशियों में सूर्य का संक्रमण होने पर श्राद्ध करना चाहिए।
- नक्षत्रों एवं ग्रहसम्बन्धी पीड़ा होने पर, बुरा स्वप्न दिखलाई पड़ने पर काम्यश्राद्ध तथा नवान्न प्राप्त होने पर श्राद्ध करना चाहिए। *मत्स्यपुराण* में नित्य, नैमित्तिक और काम्य तीन प्रकार के श्राद्धों का उल्लेख है।
- अमावस्या को जब आर्द्रा, विशाखा और स्वाति नक्षत्रों का योग हो तो उस समय श्राद्ध करने से पितरों को आठ वर्ष तक की तृप्ति प्राप्त होती है।
- अमावस्या को यदि पुष्य, आर्द्रा तथा पुनर्वसु नक्षत्र हो तो श्राद्ध करने से पितरों को बारह वर्ष तक तृप्ति प्राप्त होती है।
- श्राद्ध के लिए धनिष्ठा, पूर्वा, भाद्रपद एवं शतभिषा नक्षत्रों से युक्त अमावस्या दुर्लभ मानी जाती है। अक्षय फल प्राप्ति के लिए नौ नक्षत्रों से युक्त अमावस्या को श्राद्ध करना चाहिए।
- वैशाख मास के शुक्लपक्ष की तृतीया, कार्तिक के शुक्लपक्ष की नवमी, भाद्रपद के कृष्णपक्ष की त्रयोदशी, माघमास की अमावस्या, चन्द्रमा अथवा सूर्य के ग्रहण के समय तथा चारों अष्टकाओं[10] में अथवा उत्तरायण या दक्षिणायन के आरम्भ के समय जो मनुष्य एकाग्रचित्त से पितरों को तिलमिश्रित जल भी दान करता है, वह सहस्र वर्षों तक श्राद्ध करने के पुण्य को प्राप्त करता है।
- माघ की अमावस्या का यदि शतभिषा नक्षत्र से योग हो जाए तो पितृगण की तृप्ति के लिए यह परम उत्कृष्ट काल माना जाता है।
- यदि माघी अमावस्या के साथ पूर्वभाद्रपद नक्षत्र का योग हो और उस अवसर पर पितरों के लिए श्राद्ध किया जाए तो इस कर्म से तृप्त पितृगण युग तक शयन करते हैं।
- गङ्गा, शतद्रु, विपाशा, सरस्वती और नैमिषारण्य में स्थित गोमती नदी में स्नान करके, आदरपूर्वक पितरों का तर्पण करने वाला मनुष्य अपने समस्त अशुभों को नष्ट कर लेता है।[11]

वराहपुराण में श्राद्ध विधियों के क्रम में पिण्डदान को महत्त्वपूर्ण माना गया है। यह पुराण श्राद्धकर्म के लिए सरलतम विधियों एवं अल्पधन व्यय में ही इसके सम्पादन की बात करता है और श्राद्धकर्म के लिए "श्रद्धाभाव" को ही सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण स्थान देता है। *वराहपुराण* के अनुसार सम्पत्ति होने पर श्राद्ध-कर्म करते समय ब्राह्मणों को रत्न, वस्त्र, पान एवं सम्पूर्ण भोग सामग्रियों का दान करना चाहिए। वित्ताभाव में श्रेष्ठ ब्राह्मणों को भोजन कराकर भी इस कार्य को पूर्ण कर सकते हैं। अन्नदान में भी असमर्थ होने पर अपनी शक्ति के अनुसार श्रेष्ठ द्विजों को वन्यशाक एवं स्वल्प दक्षिणा देना चाहिए। उसमें भी असमर्थ होने पर श्रेष्ठ द्विज को प्रणाम कर अपने हाथ से एक मुट्ठी काला तिल प्रदान करना चाहिए अथवा विनम्रतापूर्वक सात अथवा आठ तिलों से युक्त जलाञ्जलि देनी चाहिए। इन सबका भी अभाव होने पर कहीं से गौ का चारा लाकर भक्तिपूर्वक गायों को देना चाहिए।[12] यदि यह करने में भी असमर्थ हो तो वन में जाकर अपनी कक्षा (काँख) के मूलभाग को दिखाते हुए अर्थात् दोनों हाथ ऊपर उठाकर सूर्यादि लोकपालों के प्रति ऊँचे स्वर में निम्न श्लोक का पाठ करना चाहिए–

न मेऽस्ति वित्तं न धनं न चान्य
च्छ्राद्धस्य योग्यं स्वपितॄन् नतोऽस्मि।
तृप्यन्तु भक्त्या पितरो मयैतो
भुजौ ततौ वर्त्मनि मारुतस्य।।[13]

अर्थात् हे पितरों! मेरे पास धन सम्पत्ति अथवा श्राद्ध योग्य अन्य कुछ भी नहीं है अतः मैं अपने पितरों को नमस्कार करता हूँ। मेरी भक्ति से पितृगण तृप्त हो जायें। आकाशमार्ग में अपनी दोनों भुजाओं को उठाकर मैं यह सत्य कहता हूँ।

उक्त वर्णन श्राद्ध शब्द की भावात्मक व्यापकता को सिद्ध करता है। यहाँ श्रद्धापूर्वक किये गये धन-धान्यादि के तर्पण के समकक्ष ही भावात्मक एवं वचनात्मक श्रद्धा को भी समान स्थान दिया गया है। इस भाव को निम्न श्लोक पुष्ट करता है–

इत्येतत् पितृभिर्गीतं भावाभावप्रयोजनम्।
कृतं तेन भवेच्छ्राद्धं य एवं कुरुते द्विज।।[14]

अर्थात् जो द्विज भाव एवं अभाव की स्थिति में पितरों द्वारा बताये गये कर्मों को श्रद्धापूर्वक करता है उसके द्वारा श्राद्ध का कार्य सम्पन्न हो जाता है। श्राद्ध की विधियों के सम्पादन के साथ ही यह भी जानना आवश्यक हो जाता है कि श्राद्ध में किन व्यक्तियों को निमन्त्रित किया जाना चाहिए और किन्हें नहीं। इस विषय में *वराहपुराण* में स्पष्ट निर्देशित है कि श्राद्ध में त्रिणाचिकेत[15], त्रिमधु[16], त्रिसुपर्ण[17], छः वेदाङ्गों का ज्ञाता, वेदज्ञ, श्रोत्रिय, योगी ज्येष्ठ साम को गान करने वाला, पुरोहित, भाँजा, दौहित्र, श्वसुर, जामाता, मामा, तपस्वी ब्राह्मण, पञ्चाग्नि का सेवन करने वाला, शिष्य, सम्बन्धी एवं माता-पिता का सेवक–इन ब्राह्मणों को श्राद्ध नियोजित करना चाहिए।[18]

मित्रद्रोही, कुत्सित नखवाला, काले दाँत वाला ब्राह्मण, कन्या को दूषित करने वाला, अग्नि एवं वेद को छोड़ देने वाला, सोम का विक्रय करने वाला, अभिशापग्रस्त, चोर, ग्राम्ययाजक, वेतन लेकर पढ़ाने वाला तथा वृत्ति देकर पढ़ने वाला, पुनर्विवाहित स्त्री का पति, माता एवं पिता का त्यागी, शूद्रा अथवा सूत जाति की स्त्री का पति, शूद्रा स्त्री द्वारा जिसका भरण-पोषण होता हो, मन्दिर में मूर्तिपूजा द्वारा जीविका निर्वाह करने वाला ब्राह्मण श्राद्ध में निमन्त्रण का अधिकारी नहीं होता है।[19]

ब्राह्मणों को श्राद्ध से एक दिन पूर्व निमन्त्रित करना चाहिए। घर आये ब्राह्मणों का पैर धुलाना चाहिए। हाथ शुद्ध कर आचमन कर लेने वाले ब्राह्मणों को आसनों पर बैठाना चाहिए। पितृकार्य के सम्पादन के निमित्त अयुग्म

अर्थात् तीन तथा देवकार्य में युग्म अर्थात् दो अथवा पितर एवं देवता के निमित्त एक-एक ब्राह्मण को निमंत्रित करना चाहिए। देव ब्राह्मण को पूर्वाभिमुख अथवा उत्तराभिमुख दोनों दिशाओं में बैठाकर भोजन करावे किन्तु पितृ एवं पितामह सम्बन्धी ब्राह्मण को उत्तरमुख बैठाकर ही भोजन कराना चाहिए। पिता और पितामह दोनों का श्राद्ध पृथक्-पृथक् अथवा एक ही पाक द्वारा किया जा सकता है।[20]

श्राद्ध करते समय पितरों को आसन स्वरूप कुशा देना चाहिए एवं अर्घ्य विधि से निमंत्रित ब्राह्मणों का सत्कार कर उनकी आज्ञा लेकर, देवताओं का आवाहन करना चाहिए। यवयुक्त जल से देवताओं को अर्घ्य प्रदान कर उन्हें धूप-दीप आदि अर्पित कर मंत्र से पितरों का आवाहन कर तिलमिश्रित जल से पितरों को अर्घ्य प्रदान करना चाहिए।

श्राद्ध के समय आये हुए अतिथि द्विजों का भी पूजन करना चाहिए क्योंकि श्राद्ध के समय अपूजित अतिथिद्विज श्राद्ध क्रिया के फल को नष्ट कर देता है। तदनन्तर क्षार पदार्थों से रहित अन्न द्वारा अग्नि में तीन बार आहुति देनी चाहिए। "अग्नये कव्यवाहनाय स्वाहा"-इस मन्त्र से प्रथम आहुति देनी चाहिए। तदुपरान्त "सोमाय वै पितृमते स्वाहा"-इस मन्त्र से द्वितीय तथा "वैवस्वताय स्वाहा"-इस मंत्र से तीसरी आहुति देनी चाहिए। हवन से बचे हुए अन्न को ब्राह्मणों के पात्र में थोड़ा-थोड़ा डाल देना चाहिए।

अग्नये कव्यवाहनाय स्वाहेति प्रथमाहुतिः।
सोमाय वै पितृमते दातव्या तदनन्तरम्।।
वैवस्वताय चैवान्या तृतीया दीयताहुतिः।
हुतावशिष्टमल्पाल्पं विप्रपात्रेषु निर्वपेत्।[21]

हवन के बाद शुद्धतापूर्वक बनाये गये भोजन को श्रद्धा एवं प्रसन्नतापूर्वक ब्राह्मणों के समक्ष निवेदित करना चाहिए। श्राद्धकर्त्ता को रक्षोध्नमंत्रपाठपूर्वक भूमि को तिलों से आच्छादित कर ब्राह्मण ही पितर हैं इस प्रकार पितरों का ध्यान करना चाहिए और यह कामना करनी चाहिए कि होम द्वारा पुष्ट मेरे पिता, पितामह एवं प्रपितामह आज तृप्त हों।

ब्राह्मणों के तृप्त हो जाने पर पृथ्वी के ऊपर अन्न विकीर्ण कर उन्हें आचमन के लिए जल दें। तदनन्तर सम्पूर्ण अन्न से पिण्ड निर्माण कर एकाग्रचित्त से पृथ्वी पर जल से संकल्प कर पितरों को पिण्डदान करें। पिण्ड पर पितृतीर्थ से जल प्रदान करना चाहिए और जलाञ्जलि भी पितृतीर्थ से ही देनी चाहिए। उच्छिष्ट अन्न के समीप अपने पिता को प्रथम पिण्ड प्रदान करें, दूसरा पिण्ड उनके पिता अर्थात् पितामह तथा अन्य पिण्ड उनके पिता अर्थात् प्रपितामह को प्रदान करना चाहिए।

स्वपित्रे प्रथमं पिण्डं दद्यादुच्छिष्टसन्निधौ।
पितामहाय चैवान्यं तत्पित्रे च तथाऽपरम् ।।[22]

पिण्डदान के अनन्तर द्विजाग्रों की पूजा कर उन्हें आचमन कराना चाहिए और मङ्गलकामना के साथ दक्षिणा प्रदान करनी चाहिए, उपरान्त "विश्वेदेवाः प्रीयन्ताम्"[23] इस मंत्र को पढ़ना चाहिए। उपस्थित ब्राह्मणों से आशीर्वाद प्राप्त कर देवताओं का विसर्जन करना चाहिए। विसर्जन के क्रम में पहले पितरों एवं मातामहों का तदुपरान्त विश्वेदेवो का विसर्जन करना चाहिए।[24] विसर्जन के उपरान्त वैश्वदेव नामक नित्यकर्म कर अपने पूज्य भृत्यों और बन्धुजनों का सम्मान कर उनके साथ भोजन करना चाहिए। दौहित्र, कुतप (दिन का आठवाँ प्रहर), तिल एवं रजत ये पदार्थ श्राद्धकाल में शुभ माने गये हैं। श्राद्ध करने वाले एवं श्राद्ध में भोजन करने वाले इन दोनों को श्राद्धकाल में क्रोध एवं शीघ्रता नहीं करनी चाहिए।[25]

इन विवरणों से ऐसा प्रतीत होता है कि धर्मशास्त्रों में वर्णित श्राद्धकर्म को जन-मानस में दृढ़ता से स्थापित किया जा सके तथा इनके सम्पादन के प्रति मानव मन की भावना प्रबल से प्रबल हो इसीलिए पुराणों में श्राद्धकर्म का विस्तृत विधान एवं फलप्राप्ति की महत्ता का अतिशय रूप में वर्णन किया गया। इन पौराणिक विवरणों की तुलना धर्मशास्त्रों एवं स्मृतियों से करने पर स्पष्ट होता है कि कर्मकाण्ड की स्थापना ही इनका उद्देश्य रहा है और पुराण इस प्रयास में पूर्णतः सफल भी हुए हैं।

श्राद्ध पितरों को तृप्ति एवं मुक्ति प्रदान करते हैं। मनः संकल्प द्वारा विधिपूर्वक की गयी ये क्रियाएँ व्यर्थ हों ऐसा नहीं है। चन्द्रमा मन का अधिष्ठाता है, वह हमारे द्वारा संकल्पित क्रियाओं को पितरों तक पहुँचाने में सर्वथा समर्थ है। अपने जिन पिता आदि से हमें यह शरीर प्राप्त हुआ है, हम पालित हुए हैं, उनके प्रति यदि हम इस कर्म का पालन न कर सकें तो यह हमारी कृतघ्नता होगी। अतः श्राद्धकर्म का सम्पादन प्रत्येक प्राणी का आवश्यक धर्म है।

संदर्भ

1. *अथर्ववेद* 18/4/48
2. *वही* 12/2/45
3. *वही* 8/2/5
4. ये निखाता ये परोप्ता ये दग्धाः ये चोद्धिताः सर्वातानग्र आ वह पितृन हविषे अत्तवे। *अथर्ववेद* 18/2/34
5. विद्यातपः समृद्धेषु हुतं विप्रमुखाग्निषु। *मनुस्मृति* 3/18
6. *विष्णुपुराण* 3/15/5
7. *वराहपुराण* 13/52-53
8. *मनुस्मृति* 3/274
9. वर्ष के जिस अहोरात्र में सूर्य के विषुवत्रेखा पर चले जाने पर दिन-रात का मान बराबर हो जाता है, उस समय विषुवयोग की प्राप्ति या संक्रान्ति होती है।
10. प्रत्येक मास की सप्तमी, अष्टमी या नवमी तिथियों के समूह की तथा पौष, माघ एवं फाल्गुन के कृष्णपक्ष की अष्टमी तिथियों की "अष्टका" संज्ञा होती है।
11. *वराहपुराण* 13/36-49
12. *वही* 13/53-58
13. *वही* 13/60
14. *वही* 13/61
15. अध्वर्यु यज्ञ करने वाला, द्वितीय कठ के अन्तर्गत 'अयंवाव यः पवते' इत्यादि तीन वाक्यों को पढ़ने वाला या उसका अनुष्ठान करने वाला।
16. त्रिमधु - मधुव्वाता इत्यादि ऋचा का अध्ययन और मधुव्रत का आचरण करने वाला।
17. वैदिक ऋचाओं का ज्ञाता। ब्रह्म मेतु मां इत्यादि तीन अनुवाकों का अध्ययन और तत्सम्बन्धी व्रत करने वाला।
18. *वराहपुराण* 14/2-4
19. *वही* 14/5-7
20. *वही* 14/8-13
21. *वही* 14/21-22
22. *वही* 14/35
23. *वही* 14/38
24. *वही* 14/39-40
25. *वही* 14/47-48

•